संवाद

कचरे के काम में शामिल
महिलाओं की आजीविका व स्वास्थ्य

शशि भूषण पंडित

ठोस कचरा

हमारे देश के शहरों में ठोस कचरा प्रबंधन की औपचारिक व्यवस्था सुस्थापित मानदंडों पर आधारित है। यह व्यवस्था औपनिवेशिक काल की देन है। शहरी स्थानीय निकाय अपनी ज़िम्मेदारी केवल यहीं तक मानते हैं कि वे सड़कें साफ़ करने के लिए सफ़ाई कर्मचारियों की निश्चित संख्या तैनात कर दें; निश्चित फ़ासलों पर पक्के कूड़ेदान बनाने दें जहां घरों और व्यवसायों का कूड़ा फेंका जा सकता है; खास डिज़ाइन और क्षमता वाले वाहन उपलब्ध करा दें ताकि कचरे को बड़े कूड़ेदानों तक ढोया जा सके और निश्चित वर्षों के लिए सेनेटरी लैंडफिल्स की व्यवस्था कर दें।

इसके साथ-साथ परंपरागत रूप से घूम-घूम कर कूड़ा इकट्ठा करने वाले, रद्दी वालों की भी एक बड़ी जमात रही है। ये लोग गलियों में फेरी लगाते हैं और रीसाइक्लिंग योग्य पदार्थ खरीदते या इकट्ठा करते हैं। घरों और दफ़्तरों से ये लोग पुराने अखबार, कांच की बोतलें और पुराने उपकरण खरीदते हैं। इनके अलावा नियमित फेरीवाले या अन्य लोग भी होते हैं (मुख्य रूप से महिलाएं एवं बच्चे) जो पुराने कपड़ों के बदले नए कपड़े बेचते हैं। ये सभी लोग कबाड़ी वालों से जुड़े हुए हैं, जो खास स्थानों पर काम करते थे और तमाम तरह का इकट्ठा किया हुआ और खरीदा हुआ कचरा खरीदते हैं।

व्यवस्थागत बदलाव

यह समानांतर व्यवस्था अब भी मौजूद है लेकिन अब औपचारिक व्यवस्था के साथ इसका संबंध तनावपूर्ण होने लगा है। इसका मुख्य कारण यह है कि कचरे की गुणवत्ता और मात्रा में बदलाव आ रहा है जिसके चलते नगरपालिकाओं पर कचरे की ढुलाई और निस्तारण का भार

पहले से बढ़ गया है। जिन चीज़ों को कचरे से निकाला जा सकता है उनकी कीमत का सवाल भी महत्वपूर्ण है। लिहाज़ा, जहां एक तरफ़ प्रति व्यक्ति कचरा उत्पादन और वस्तुओं के उपभोग में इज़ाफ़ा हुआ है वहीं दूसरी तरफ़ शहरी आबादी भी तेज़ी से फैली है जिसके चलते नगरपालिकाएं कचरे के बढ़ते अंबार के संग्रह, परिवहन, निस्तारण की लागतों से परेशान रहने लगी हैं।

शहरी ठोस कचरे का स्वरूप भी बदल गया है। अब पैकेजिंग वाली चीज़ें ज़्यादा आने लगी हैं। इनमें से बहुत सारी चीज़ों की कम उर्जा लागतों पर रीसाइक्लिंग की जा सकती है। ऐसे कचरे को इकट्ठा करने से कमाई बढ़ी है। ऐसे कचरे की तादाद भी बढ़ी है जो जैविक किस्म का है और जिसकी कम्पोस्टिंग की जा सकती है। इनमें से बहुत सारे पदार्थ अब पहले से ज़्यादा ज़हरीले हो गए हैं और अधिकृत कचरा प्रबंधक उनको संभालने से कतराते हैं। लिहाज़ा, इस कारोबार में ज़्यादा लोग आ गए हैं। इनमें बहुत सारे प्रवासी मज़दूर, घरेलू कामगर, चौकीदार, सफ़ाई वाले, नगरपालिका अधिकारी और पुलिस अधिकारी भी एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं।

आजीविका से जुड़े मुद्दे

शहरी विकास मंत्रालय की मान्यता यह है कि शहरी स्थानीय निकायों के पास ठोस कचरा प्रबंधन के लिए न तो पैसा और न ही क्षमता है इसलिए सार्वजनिक-निजी सहभागिता का रास्ता अपनाया जा सकता है। इसी समझ का नतीजा है कि बहुत सारी नगरपालिकाओं ने निजी कंपनियों के साथ करार किया है और उन्हें कचरे को इकट्ठा करने और निश्चित लैंडफ़िल्स में ले जाकर फेंकने का ज़िम्मा सौंपा है। कई जगह इन कंपनियों को घर-घर जाकर कचरा इकट्ठा करने का ज़िम्मा भी सौंप दिया गया है। लेकिन दूसरी तरफ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त की गई समिति ने सुझाव दिया है कि इस प्रक्रिया में स्थानीय कचरा बीनने वालों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

जैसे-जैसे ये प्रक्रियाएं पुख्ता हुई हैं कचरा बीनने वालों ने भी अपनी आजीविका बचाने के लिए अपने संगठन बनाए हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें बहुत सारे स्वैच्छिक संगठनों की भी मदद मिली है। इन प्रयासों में इस बात पर आम सहमति बनती दिखाई दे रही है कि कचरा बीनने वालों के संगठनों को कचरे तक पहुंच, कचरे की छंटाई के लिए जगह, भंडारण और कचरा प्रासेसिंग तथा व्यापार में टिके रहने के लिए आसान शर्तों पर छोटे कर्ज़े मिलने चाहिए और इसके लिए उनको क़ानूनी पहचान की ज़रूरत है।

दिल्ली की दो पहचाने हैं। एक देश की राजधानी के रूप में और दूसरी एक राज्य की तरह। दिल्ली में रहने वाले लोग भी दो पहचानों के साथ ज़िंदा है। एक पहचान लिए चकाचौंध वाला जीवन जीने वाले उच्च वर्ग और दूसरी बगैर सम्मान और पहचान के महानगर में रहने को मजबूर ग़रीब मज़दूर। कचरे की बात करें तो ज़्यादातर कामगर भारत के अंचलों से रोज़गार की तलाश में पलायन होकर दिल्ली आये हैं। कचरे के व्यवस्थापन को समझने का प्रयास करें तो दिल्ली प्रति दिन सरकारी आंकड़ों के अनुसार 15 हज़ार मैट्रिक टन कचरा पैदा करती है। इसको व्यवस्थित करने के लिए महानगर में 5 नगरपालिकाएं हैं। 3 बड़े लैंडफ़िल भी हैं कचरे को ठिकाने लगाने के लिए, चार प्राइवेट कंपनी हैं और 1 कचरा से बिजली बनाने के लिए परियोजना भी चल रही हैं। 3.5 लाख असंगठित क्षेत्र के श्रमिक भी अपना अनाधिकारिक तौर पर योगदान दे रहे हैं।

कचरा व्यवस्थापन के काम चूंकि व्यवस्थित नहीं है इसलिए इसमें उतना ही ज़्यादा ख़तरा भी है। इस बात को सुधारने के लिए कोई एक्शन प्लॉन नहीं किया गया है। यह सिर्फ़ चर्चा का विषय बन कर रह गया है।

महिलाओं और बच्चों को देखें तो इस काम के एवज़ में वे अपना जीवन का आधा हिस्सा क़ुर्बान कर रहे हैं। इन्हें काम करने के दौरान कई बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। चमड़ी की बीमारी, सांस की बीमारी, खुजली, टेटनस, डायरिया, चेचक इत्यादि! इन बीमारियों के लगने से ये अपना जीवन पूरा नहीं जी पाते क्योंकि इनके लिए कोई स्वास्थ्य सहायता नहीं मिल पाती। सरकार की स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं का लाभ भी इस वर्ग को नहीं मिल पाता। कहने के लिए असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा क़ानून 2008 से लागू है। लेकिन उसका लाभ शायद ही किसी कामगर को प्राप्त हो।

कचरे के काम में जुड़ी महिलाओं और बच्चों की संख्या करीब 1.5 लाख से 1.75 लाख के आसपास है। इस काम से जुड़ी महिलाओं को कुछ खास तरह की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। यौन उत्पीड़न, अभ्रद मौखिक व शारीरिक व्यवहार, हिकारत और अपमान की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी, छुआछूत तो इन महिलाओं के जीवन की सच्चाई बन चुकी हैं। इन महिलाओं और लड़कियों को अपने काम की जगह के साथ-साथ घरों के भीतर भी पुरुषों के दमन, शोषण और अपमान का सामना नियमित रूप से करना पड़ता है। घरेलू हिंसा और यौन हिंसा के मामले भी सामने आए हैं।

दिल्ली शहर में तीन लैंड़फ़िल्स हैं— गाज़ीपुर, भलस्वा और ओखला। आकड़ों और पर्यावरण समूहों के शोध अध्ययन से मालूम चला है कि यहां काम करने वाले कामगरों में कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। कचरे से पैदा होने वाली ज़हरीली गैस मिथेन में सांस लेने से फेफड़ों को बहुत नुकसान पहुंचता है। यहां पैदा होने वाला ज़हरीला कचरा, धातु, लैड जैसे पदार्थ ज़मीन के अंदर पानी को भी प्रदूषित करते हैं। इस पानी को पीने से अनेक तरह की बीमारियों और संक्रमण का ख़तरा बढ़ जाता है। गर्भवती महिलाओं के लिए विशेष रूप से यहां की ज़हरीली गैस व काम के हालात उपयुक्त नहीं है। अजन्मे बच्चे के लिए भी दमा, हृदयरोग, चर्मरोग, या अन्य तरह के संक्रमण और रोगों की संभावना बढ़ जाती हैं।

इस समुदाय के योगदान को देखा जाय तो अभी तक ये तकरीबन 30 प्रतिशत कचरे का निपटान अपने श्रम से करते हैं। लेकिन अगर इन कामगरों को कचरा व्यवस्थापन का हिस्सा बना लिया जाय तो महानगर में रोज़ पैदा होने वाले कचरे का 80 प्रतिशत हिस्सा का स्थानीय स्तर पर निपटारा हो जायेगा। इसके लिए किसी तरह के और खर्चे की आवश्यकता नहीं है। मोटे तौर पर कचरा तीन तरह का होता है— पुनर्चक्रण 30%, जैविक 50% और अनुपयोगी 20% है। असंगठित क्षेत्रों के मज़दूर पुर्नचक्रण योग्य कचरा की छंटाई करके अपना जीविका चलाते हैं। यदि उनको अवसर दिया गया तो वे जैविक कचरा को खाद बना कर समाज में योगदान कर सकते हैं।

शशि भूषण पंडित *अखिल भारतीय कबाड़ी मज़दूर महासंघ के सचिव हैं।*